आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 2/मार्च 2023
Received:11/02/2023; Accepted:15/02/2023 Reviewed: 20/03/2023; Published:24/03/2022

दलित उपन्यासों में समाजबोध

डॉ. मो. माजिद मियाँ,
प्राध्यापक (हिंदी विभाग),
श्री अग्रसेन महाविद्यालय, दालखोला,
उत्तर दिनाजपुर
ई मेल: khan.mazid1340@gmail.com
मोबाइल: 9851722459

डॉ. मो. माजिद मियाँ, **"दलित उपन्यासों में समाजबोध"** , आखर हिंदी पत्रिका, खंड3/अंक 2/मार्च 2023, (141-147)

सारांश :

हिन्दी भाषा में उपन्यास लेखन की परम्परा सौ साल से भी अधिक पुरानी है। हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा में सामाजिक, धार्मिक, आदर्शवादी, मार्क्सवादी, आँचलिक, यथार्थवादी, प्रकृतिवाद आदि से सम्बद्ध उपन्यास लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। इन सभी धाराओं के अलावा कई पक्ष, पहलु, मुद्दे हैं जो चर्चा के विषय हैं, उन पर बात कर उन पहलुओं, मुद्दों और उनसे जुड़े लोगों की समस्याओं, कठिनाइयों एवं सच्चाईयों को सबके सामने लाना एवं उनको दूर करने का प्रयास किया जाना अति आवश्यक है। वे लोग, उनकी समस्याएं, मुद्दे आज भी हाशिए पर है, उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं है । आज इसी हाशिए की अवधारणा ने हिन्दी में कई साहित्यिक विमर्शों को जन्म दिया है । हजारों वर्षों के शोषण एवं भेदभाव के विरूद्ध इनके संघर्ष का परिणाम है कि आजादी के बाद इन पर अधिक ध्यान दिया गया । आज की जरूरत इन्हें दिये गये विधिक अधिकारों की मूल भावना को समाज के यथार्थ में परिवर्तित करना है। इन विमर्शों की सबसे बडी सामाजिक उपयोगिता है जिसके चलते वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में ये विमर्श हाशिए पर नहीं, वरन् केन्द्रीय स्थान रखते हैं। हिन्दी में महात्मा ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर के विचारों एवं संघर्ष से

आन्दोलित दलित लेखन एवं पश्चिमी नारीवाद की छाया में विकसित स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श से प्रभावित लेखन उत्कृष्ट रूप में हमारे सामने है।

बीज शब्द : इतिहास परिचय, अवधारणा, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याएँ आदि.

प्रस्तावना :

डा. भीमराव अम्बेडकर के जीवन दर्शन को जाने बिना 'हिन्दी दलित साहित्य' को समझना असंभव है। डॉ. अम्बेडकर हिन्दी दलित साहित्य के प्रेरणापुंज हैं। उन्होंने दलित जातियों को "शिक्षित बनो, संगठित रहो, और संघर्ष करो"1 का मूलमंत्र दिया था। साहित्यकार सूरज पाल चौहान ने दलितों के जीवन और 'दलित साहित्य' पर डा. अम्बेडकर के गहरे प्रभाव को स्वीकार किया है। यह प्रभाव दलित समाज को सामाजिक बराबरी के साथ-साथ आर्थिक समानता और सत्ता में बराबर भागीदारी के लिये भी प्रेरित करता है। हाशिए के समाज में अब किसान-मजदूर, अल्पसंख्यक, वृद्ध, निःशक्तजन एवं किन्नर इत्यादि सम्मिलित हैं। उल्लेखनीय है कि इनसे सम्बन्धित विमर्श न केवल साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को समृद्ध करते हैं, बल्कि रचना, आलोचना, समीक्षा के परम्परागत प्रतिमानों से अलग साहित्य के नये सौन्दर्य शास्त्र की वकालत भी करते हैं। इतिहास की बात चलती है, तो आम तौर पर यह समझ लिया जाता है कि वह राजा महाराजाओं के साम्राज्यों उनकी शासन पद्धतियों और जय-पराजय की गाथाओं का लेखा-जोखा है। अभी तक ऐसे ही इतिहास लिखे भी गए हैं, इसलिए इतिहास के बारे में यही गलत धारणा रुढ़ हो गई है। भारत का इतिहास इन्हीं धारणाओं के कारण एक वंश का अभिलेख मात्र बनकर रह गया है।

मैं आपको यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि इसी गलत इतिहास बोध के कारण लोगों ने दलितों और स्त्रियों को इतिहासहीन मान लिया है। जबकि भारत के इतिहास में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वे इतिहासवान है, सिर्फ जरुरत दलितों और स्त्रियों द्वारा अपने इतिहास को खोजने की है। इस संदर्भ में वरिष्ठ दलित चिंतक कंवल भारती कहते है कि –"डॉ. आंबेडकर पहले भारतीय इतिहासकार है जिन्होंने इतिहास में दलितों की उपस्थिति को रेखांकित किया है।"2 दलित रचनाकार इन बिंदुओं को पकड़कर अपनी रचना के द्वारा समाज के सामने रख रहा है। हिंदी दलित उपन्यास की बात करें तो रुप नारायन सोनकर के 'डंक' उपन्यास में देख सकते है और वे कहते है कि –"इतिहास बताता है कि आर्य लोगों ने बाहर से आकर इस देश के मूलनिवासियों यानी अनार्यों पर कब्जा कर लिया था। अनार्य और कोई नहीं बल्कि इस देश के दलित और पिछ़डे वर्ग के लोग थे। आर्य ने राजनीति, सत्ता,अर्थ, ज्ञान, विज्ञानपर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

शक्तिशाली बन गए थे । यहाँ के मूलनिवासों यानी अनार्यों को विकास करने का मौका नहीं दिया था। आज भी उनकी संताने वही संताप भोग रही है।"3

आज का दलित डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के कार्य और विचारों के कारण अपना इतिहास स्वयं जान रहा है और लिख रहा है। इसी कारण दलित उपन्यास में हमें इतिहास बोध होता है । दलित साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधारपर विकसित हो रहा है । उसने अपना अलग रचना संसार निर्मित किया है, जो हमें अपने इतिहास संस्कृति और सभ्यता के विभिन्न पक्षों से अवगत कराती है। क्योंकि दलित वर्ग की संस्कृति एवं सभ्यता सबसे पुरानी है । उसका अहसास आज के दलित उपन्यासों में बराबर हो रहा है। "द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अंगुठा क्या इसलिए माँगा कि धनुष्य विद्या में वह और भी प्रवीण न हो जाये? क्या द्रोणाचार्य गुरु होकर भी नहीं चाहते थे कि एकलव्य जैसा शिष्य उतनी प्रगति न करें कि उसके अपने शिष्य पीछे रह जाये।" इस उपन्यास के संदर्भ से यह स्पष्ट होता है कि दलित समाज के साथ हमेशा षडयंत्र रचा गया है ताकि वो आगे ना आये । आज के युग में द्रोणाचार्य अंगूठा नहीं काटेगा बल्कि अंक काटेगा, यह इतिहास बोध दलितों का है । हिंदी दलित उपन्यास का इतिहास बोध उन्हें अपनी संस्कृति और सभ्यता से परिचित करता है तो दूसरी ओर तथा कथित भारतीय संस्कृति, वैदिक संस्कृति यानी हिंदूवादी संस्कृति के मानवता विरोधी चरित्र को उद्घाटित करके समस्त इतिहास और परंपरा को नकार देती है । दलितों के इतिहास में दलित महिलाओं का भी बहुत बडा योगदान रहा है। हिंदी दलित उपन्यास में उन महिलाओं का योगदान देख सकते है। "काली चंडी दुर्गा का मैं रुप हूँ । दूर्गा काली चंडी सभी दलित महिलाएँ थी । वे सभी देवियाँ नहीं बल्कि कर्मयोगी महिलाएँ थी, जो भी कामुक व दुराचारी व्यक्ति उनके पास गया था वह तरा नहीं मरा था।"

इस भारतीय व्यवस्था में दलित महिलाओं के साथ भी अन्याय-अत्याचार करके उनके कर्मयोगी इतिहास को दबाकर अपना वर्चस्व स्थापित किया है । हिंदी दलित उपन्यास इन सभी प्रकार के इतिहास को समाज के सामने प्रस्तुत कर रहा है। इस संदर्भ में हरिनारायन ठाकुर कहते है कि –"दलित साहित्य आंबेडकरवादी सोच पर आधारित है, इसलिए इसकी सामाजिकता वर्तमान समाज व्यवस्था को परले सिरे से खारिज करती है। उसका इतिहास बोध भी मुख्यधारा के इतिहास से बिल्कुल भिन्न है।"अत: स्पष्ट है कि इस आशा के साथ हिंदी दलित उपन्यास का मुख्य सरोकार अपनी संस्कृति, परंपरा और इतिहास में अपनी पहचान तथा अपनी अस्मिता की खोज करना जो समानता, बंधुता व स्वतंत्रता जैसे जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है।

दलित साहित्य का समाज बोध पाठक और श्रोता की चेतना एवं अनुभूति को प्रभावित करने वाली गहन संवेंदना से ही पूरा होता है । साहित्य पर समय और समाज का स्पष्ट प्रभाव होता है। साहित्य की रचनाओं में मनुष्य की मस्तिष्क पर पड़ने वाले जीवन और जगत की घटना और स्थितियों का ही प्रतिबिंब होता है। दलित साहित्य की मान्यता है कि कला या साहित्य को सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए कला सृजन में आगे बढ़ना चाहिए । इस दृष्टि से दलित साहित्य शुद्ध कला न होकर एक सामाजिक आंदोलन है।

हिंदी दलित उपन्यास यह सामाजिक सरंचना की तह में जाकर पूरे समाज की न केवल पड़ताल करता है बल्कि उसमें छुपी हुई विसंगतियों को उजागर कर उसके प्रतिकार और परिष्कार का प्रयत्न भी करते हैं। सुअरदान उपन्यास में यह देख सकते है, "तीन बेटियों का मानना था आदमी जाति से नहीं बल्कि कर्म से बड़ा होता है। जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना समाज में यह कोढ की तरह है । यदि इसका इलाज न किया गया तो पूरा समाज रोगी बन जायेगा।"4 भारतीय संदर्भ में यह वर्ण-व्यवस्था का विरोध करके समरस समाज के साथ-साथ मानव मात्र की गरिमा को स्थापित करना चाहता है । सामाजिक संकीर्णता और विसंगितों से मानव मात्र को मुक्त करना तथा दलित पीड़ित मानवता को समानता व सम्मान दिलाना ही इस उपन्यास का उद्देश्य हे। इसलिए प्रथमत: और अंतत: भी इसके लक्ष्य और सरोकार समाजबोध ही है।

दरअसल हिन्दी में लिखित दलित उपन्यासों के साथ सबसे बडी दिक्कत उनकी औपन्यासिक संरचना और कथा के संयोजन तथा विराम को लेकर है । यह दिक्कत अन्य विधाओं में लिखित दलित साहित्य के साथ भी है। जैसे की कौशल्या बैसंत्री की कृति 'दोहरा अभिशाप' का ढाँचा तो औपन्यासिक है, परन्तु आत्मकथा अथवा आत्मकथात्मक उपन्यास के रूप में प्रकाशित है। हिन्दी में जो दलित उपन्यास उपलब्ध है, उनमें जयप्रकाश कर्दम कृत-उपन्यास 'छप्पर' की चर्चा एक अच्छे 'दलित उपन्यास' के रूप में की जा सकती है । इसकी औपन्यासिक संरचना भी लगभग आत्मकथात्मक ही है। 'छप्पर' उपन्यास की निम्नलिखित पंक्तियों में दलित समाज की पारम्परिक अस्मिता खोने की पीड़ा को देखा जा सकता है: 'यहाँ आकर कितने अलग-अलग से पड़ गए हैं । हमें न किसी से खास मेल-जोल है न बातचीत । मदद माँगे भी तो किससे माँगें?..... गाँव में होते तो दो चार टैम का पास-पड़ोस से माँग लेते, लेकिन यहाँ कौन देगा? तू ठीक कहता है रमिया। हम बिल्कुल अकेले हैं यहाँ और यही हमारी सबसे बड़ी समस्या है। गाँव में पूरी बिरादरी में चाहे कोई कितना भी मजबूर और परेशान रहा हो, लेकिन भूख से मरते नहीं देखा कभी किसी को । गाँव में तो बिना माँगे ही मदद करते हैं लोग एक-दूसरे की । हम भी गाँव में होते यदि तो और चाहे जो होता हमारा, लेकिन कम से कम भूखे तो नहीं मरते हम ।

स्पष्टतः रमिया और सुक्खा यहाँ जिस ग्रामीण संस्कृति की बात कर रहे हैं, यह वही "अस्मिता" है जो दलित समाज के अन्दरभी एक खास प्रकार की "जातीय अस्मिता" का बोध कराती है। कहना न होगा कि उनकी यह जातीय अस्मिता पारम्परिक ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया के तहत "सामाजिक अस्मिता" का रूप अख्तियार कर लेती है । छप्पर उपन्यास में चंदन ने अगला सवाल किया –"तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारी जो आज दीन-हीन हालत है, तुम जो रोजी-रोटी के लिए दूसरों के मुंहताज हो और तुमको नीच, अछूत या हेय मानकर दूसरे लोग तुमसे जिस प्रकार घृणा और उपेक्षा का व्यवहार करते है, तुम जो शोषण, अपमान और अत्याचार के शिकार हो इस सबका कारण ईश्वर है वहीं तुम्हारी दूर्दशा कर रहा है।"6 सदियों के शोषण, प्रताड़ना, द्वेष और वैमनष्य के भेदभाव तले दबा दलित समाज भारतीयों की सांस्कृतिक विरासत और समाज व्यवस्था को आज इसी दृष्टि से देखता है। इस समाज की जो दशा हुई है यहाँ की धार्मिक परंपरा, ईश्वर का डर यही बात इस उपन्यास चंदन समाज के सामने रखता है। इतिहास में ऐसे अनेक घटनाएँ घटित हुई है जिनके पीछे जाति ने गहरी साजिश रची है। देश और समाज के विघटन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब-जब भी बाहरी आक्रांताओं से समुच्चय देश को एकसाथ मिलकर टकराने की जरुरत पड़ी, जाति में बटाँ समाज एकसाथ जुड़ने में असमर्थ ही दिखाई दिया और देश को लगातार पराजयों का मुँह देखना पड़ा। इन पराजयों से भी हमने कुछ नहीं सीखा क्योंकि देश से बड़ा जातीय गौरव था । जिस भ्रम ने इस देश को हजारों साल गुलाम बनाकर रखा । देश को गुलाम बने रहना मंजुर था लेकिन जाति को छोड़ना या इसे छोड़ना धर्म का हिस्सा था, जिसे विद्वान ईश्वरीय आदेश सिद्ध करने में लगे हुए थे । दलित उपन्यास इन सबके विरोध खडे है। वो भारतीय समाज में समता व स्वतंत्रता का पक्षधर है। मनुष्य की अस्मिता एवं सम्मान को सर्वोपरि मानता है। भारतीय समाज व्यवस्था को दलितों की विपन्नता, निरक्षरता, सामजिक उत्पीड़न, विद्वेष, हीनताबोध, गरीबी, दुख का कारण मानता है । क्योंकि भारतीय समाज व्यवस्था ने दलितों पर सिर्फ अस्पृश्यता ही नहीं थोपा बल्कि उनपर कड़े और कठोर दंड भी लागू किए । जिसे धर्म, सत्ता और साहित्य ने अपना समर्थन दिया।

'मुक्तिपर्व' यह सामाजिक उपन्यास है । इसमें दलित जीवन का चित्र है, दलित जीवन की विसंगति और समस्याएँ है और दलित शोषण-उत्पीड़न की व्यथा कथा है । "भई म्हारा इकल्ले का छोरा थोड़ा ही है सुनीत तो सारी बस्ती का हो गया है अब।"7 सुनीत ने समाज में व्याप्त जातिभेद देखा था और उसके विरोध में आवाज भी उठाई थी। प्राथमिक पाठशाला में पढ़ते समय वह पुस्तक में छपे चित्र पर शंका प्रकट करते हुए पूछता है प्याऊ पर बैठा आदमी नलकी से दूर से दलितों को पानी पिलाता है । इस चित्र में नलकी क्यों नहीं है? सुनीत बच्चों और मास्टरजी के साथ प्याऊ पर जाकर पंडितजी को ललकारता है और नलकी खींचकर फेंक देता है। छोटे बच्चे

का इतना साहस और पुलिस का भय देखकर वह सुनीत की बात से सहमत हो जाता है। आजादी मिलने के पाँच-छह बरस बितने के समय के सामाजिक वातावरण के लेखक ऐसी कल्पना कर सके कि पाँच-छह का दलित बालक भी पंडित को भयभीत करे उसे जातिभेद मानने से रोक सकता है । इसे आजादी के पर्व के साथ दलितों का 'मुक्तिपर्व' ही मानना चाहिए। यही बालक एक दिन पूरे बस्ती के लिए लड़ता है। यह समाजबोध मुक्तिपर्व उपन्यास में दिखाई देता है। "दलित उपन्यास ही लोगों का संस्कृति विमर्श और सामाजिक ऐतिहासिक पड़ताल है इसलिए इसकी सामाजिकता और सामाजिक प्रतिबद्धता पारंपारिक साहित्य से बिल्कुल अलग दिखाई पड़ती है।

'जस तस भई सवेर' उपन्यास की भूमिका लिखते हुए डॉ. कुसुम वियोगी ने लिखा है कि 'यह देश अशिक्षा के कारण मिथ्या आड़म्बरों में फँसा हुआ है, जिसके कारण आए दिन नर बलि, पशु बलि, पुजारी या तांत्रिक-ओझाओं द्वारा उत्पीड़ित नर-नारी आए दिन आत्महत्या कर लेते हैं।8 आगे उन्होंने बंधुआ मजदूरी के उदय के कारणों में इन धार्मिक अन्धविश्वासों और अशिक्षाकी चर्चा करते हुये लिखा है कि 'जिसकी परिणति बंधुआ मजदूरी से शुरू होती है और श्रमिक शोषण से गुजरती हुई उसकी त्रासदी दैनिक शोषण पर जाकर भी नहीं रूकती, बल्कि गाँव की जमीन-जायदाद तक से बेदखल हो चुके आकाश के नीचे शरण लेकर समाप्त होती है । उन्हीं बेलाग सच्चाइयों के आईने को प्रस्तुत करता यह उपन्यास दलितों के सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न को उजागर करता है जो अशिक्षित दलित समाज की व्यथा-कथा भी हैं।'9 उपन्यास में आया रूपलाल जैसा पात्र भीमंगल पहलवान के साथ बात-विचार की प्रक्रिया में इस सत्य का उद्घाटन करता है कि व्यवस्था के दोष, खासकर अज्ञानता के कारण दलित श्रमिक (वर्ग) चौधरी जैसे सामन्त और भगत जैसे पुरोहित के जाल में फंसता है और जिन्दगी भर उनकी गुलामी सहने को विवश होता हैं।

निष्कर्षत:

यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में दलित विमर्श के व्यापक प्रचलन का मूल कारण जाति और वर्ण पर आधारित सामाजिक भेदभाव रहा है। जिस कारण बीसवीं शताब्दी के अंत तक दलित वर्ग समाज में सिर उठाकर खुद को दलित-वर्गीय कहने की भी हिम्मत नहीं थी । लेकिन जब हिन्दू-धर्म के खोखले आदर्शों व संस्कृति को वे समझने लगे, तब इस व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने की हिम्मत करने लगे है। आज दलित-साहित्य का उभार भारतीय समाज व्यवस्था के परिवर्तन का द्योतक ही नहीं, बल्कि एक प्रकार से सवर्ण समाज पर श्वेत-पत्र सा लगता है। यदि देखा जाय, तो दलित चेतना को इस जीवंत स्तर के तह पहुँचाने के लिए महात्मा ज्योति राव फुले (सन 1890 एवं सावित्री वाई फुले 1831) जैसे समर्पित दंपति का योगदान विस्मृत नहीं किया जा

सकता। इन्होंने 1848 में पहली कन्या पाठशाला खोली। 1851 में अछूतों के लिए पहली पाठशाला खोली और 1864 में विधवा विवाह सम्पन्न कराया। सावित्री वाई फुले को दलित समाज की पहली भारतीय शिक्षिका बनने का गौरव प्राप्त है। कुल मिलाकर देखा जाय, तो दलित-समाज के सभी तबके के लोगों का स्वर , मुख्य धारा से अलग रहने की छटपटाहट अभिव्यक्ति करता है । हम उम्मीद कर सकते हैं, कि दलित चेतना का यह संघर्ष एक दिन उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए बाध्य करेगी। इस प्रकार हिंदी दलित उपन्यास का इतिहास एवं समाज बोध मुख्यधारा से बिल्कुल भिन्न है। वो मानवीय श्रम को ही सौंदर्य और व्यवस्था की अन्यायपूर्ण विसगंतियों से मुक्ति को ही अपना सामाजिक सरोकार और अपनी समाजिकता मानता है उसके केंद्र में केवल और केवल मनुष्य व मनुष्यता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. कंवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका - पृष्ठ - ६७ - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - २०१७

2. हरिनारायन ठाकुर - दलित साहित्य का समाजशास्त्र - पृष्ठ- ६३ - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - २००९

3. रुपनारायन सोनकर - डंक - पृष्ठ - २२ - न्यू पब्लिशर - २०१७

4. रुपनारायन सोनकर - सुउरदान - पृष्ठ-१०२ - सम्यक प्रकाशासन - १९९८

5. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर - पृष्ठ - ९८ – राधाकृष्ण प्रकाशन - १९९४

6. वही - पृष्ठ-१०७

7. मोहनदास नैमिशराय - मुक्तिपर्व - पृष्ठ-५४ - अनुराग प्रकाशन - २००२

8. डा. कुसुम वियोगी - कृति के लिए: सत्यप्रकाश, जस तस भई सवेर - पृष्ठ - 7 - कामना प्रकाशन - प्रथम संस्करण 1998,

9. वही, पृष्ठ 8

****